लोकनाट्यों के प्रमुख तत्व है– गीत एवं संगीत

चांदनी आचार्य
शोधार्थी, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ABSTRACT

Folk theatre not only depicts the primitive culture, it also describe the entire efforts, struggles and rituals done by the man kind over the ages of development. It also depicts feelings, emotions and contribution of various elements for development of mankind as well as for the folk theatre.

Key word : Folk Theatre, Sangeet, Folk Culture.

भूमिका

लोक नाट्य न केवल आदि मानव काल से आज तक मनुष्य की उन्नति में चेतना से जुड़े प्रयत्नों, कर्मों एवं अनुष्ठानों का अनुभूतिपरक विकास दर्शाता है बल्कि मानव अस्तित्व की रक्षा हेतु प्रकृति पर नियंत्रण के लिए किये गए उपायों के दौरान मानवीय अनुभूतियों एवं तत्वों के योगदान को भी दर्शाता है जो मानव सभ्यता के साथ–साथ लोक नाट्यों के लिए भी महत्वपूर्ण है।

लोक का सांस्कृतिक वैभव

लोकनाट्य, मूलतः जिन दो शब्दों से मिलकर बना है उनमें प्रथम है लोक, जो हमें किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति और संस्कारों से ओतप्रोत आमजन को परिभाषित करता है। (डॉ सत्येन्द्र के शब्दों में) ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है तथा एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।'' हालांकि लोक शब्द से यूं तो साधारण जन समुदाय का आभास होता है परन्तु लोक संस्कृति में नगरीय और ग्रामीण दोनों संस्कृतियों का समावेश है और यूं देखा जाए तो लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है जिसमें भूत भविष्य वर्तमान, सभी कुछ संचित रहता हैं या यूं कहा जाए कि सहज नैसर्गिक समाज जिसकी भावनाओं, विचारों, क्रियाओं, अपनी अपनी मान्यताओं, परम्पराओं में सम्पूर्ण समाज के कल्याण के प्रबल तत्व विद्यमान रहते है वो लोक कहलाता है। हालांकि लोक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की लोकृ धातु से है इसका धातुज अर्थ है देखने वाला और रूढिगत अर्थ है सामान्य लोग, ऐसा दर्शन सदैव उसके जीवन में सूक्ष्म संस्कार छोड़ जाता है तभी तो लोक का अस्तित्व एवम सामर्थ्य असीमित है इसीलिए लोक दर्शी को सर्वदर्शी माना जाता है। लोक जीवन की समग्रता को लेकर चलता है इसीलिये वेदों द्वारा नेति नेति कह कर मन वाणी से अगम अगोचर मानी जाने वाली सत्ता को गोदी में नन्दलाल या कौशल्या नंदन के रूप उतर लेने की सामर्थ्य लोक में ही है। और चूंकि हमारे लोक नाटको में संवाद काव्य है इसीलिए लोक काव्य को भी दृश्य के रूप में देखता है।

लोकानुरंजन का सरस एवं सशक्त माध्यम

वहीं नाट्य शब्द, मूलतः नकल, अभिनय, अनुशीलन आदि अर्थ संप्रेषित करता है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में स्वयं ब्रह्माजी नाट्य की परिभाषा देते हुये कहते है कि नाट्य, तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन हैं तथा लोक के सुख, दुःख से उत्पन्न अवस्था का अभिनय यानि की नकल हैं। अब यदि दोनों को संयुक्त रूप से देखें तो लोकानुरंजन का ऐसा सरल, सरस एवं सहज स्वरूप जो देश की सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों में रचे–बसे होने के साथ–साथ अपने विकास की प्रक्रिया में,

पूर्व घटित घटनाओं, प्रवृत्तियों की नकल प्रस्तुति कर लोकमानस के मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन का आधार बनते हैं वे लोकनाट्य कहलाते हैं।

अंग संचालन से किसी विशेष परिस्थिति या व्यक्ति के क्रिया कलापों की अभिव्यक्ति करना ही नट का प्रमुख कार्य था यही नट कला गीत बद्ध हो कर विकसित हुई तथा धीरे धीरे इसी नट कला ने रूपक का स्वरूप धारण कर लिया। कोई भी विगत घटना, या व्यक्तित्व हमारी कल्पना में उभर सके उसके लिए अभिनय कला, अंग संचालन, भावाभिव्यन्जना, आन्गिकी, वाचन, संभाषण, कथोपकथन, आदि की आवश्यकता होती है और ये समस्त तत्व एक साथ विकसित नहीं हुए, प्रारम्भिक दौर में साम वेद के पुरूरूवा और उर्वर्शी और ऋग्वेद के यम यमी के भाव प्रधान गीत संवादों में भी नाट्य के अंकुर स्पष्ट परिलक्षित होते है। जन साधारण के लोक नाट्यों की परम्परा से तो नाट्य शास्त्र से भी कई हजार वर्ष पूर्व की रही है मध्यकाल में ये लोकधर्मी नाट्य रास, चर्चरी, फागु आदि के नाम से प्रचलित हुए जो जीवन के प्रत्येक आनंद मय क्षणों में खेले जाते थे ये सभी नाट्य गेय थे इसीलिये बड़े आनंद से गाये जाते थे और नृत्य और वादन के साथ इनका जन समुदाय के समक्ष प्रदर्शन होता था। कालान्तर में ये ही खेल तमाशे समय के साथ अपना स्वरूप बदलते गए और ये लोकधर्मी परम्पराए ही आज हमारे देश में खयाल, रास, स्वांग, तमाशे, जात्रा लीलाओं के रूप धर प्रदर्शित हो रहे है।

संस्कृति की अनमोल धरोहर

ये लोकनाट्य लोक जीवन एवं लोकसंस्कृति के उज्जवल दर्पण तो है ही साथ ही मनुष्य की अनुकरण एवं अनुरंजन की प्रवृत्ति की अनमोल धरोहर भी है जिसमें उस समय की पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पौराणिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराऐं एवं परिस्थितियाँ सहज एवं सच्चे स्वरूप में प्रस्तुत होती है।[1]

सही मायने में ये लोकनाट्य हमारे लोक जीवन की पीढ़ियों का संचित ज्ञान भी हैं जो विभिन्न गीतों, छंदों एवं सहज ग्राह्य गीत–संवादों में सहेजा गया है, जिनमें समाज का हास–परिहास, व्यंग, कटाक्ष, उमंग, उत्साह, आशा–निराशा, आस्था, निष्ठा, आँसू, मुस्कान सहज भाव से संप्रेषित होते है इसीलिये गीत, संगीत, कथा, संवाद–काव्य, छंद से संयुक्त होकर ही ये लोकनाट्य लोकानुरंजन के ऐसे शाश्वत माध्यम बन जाते हैं कि अनेक प्रस्तुतियों के बावजूद भी लोग इन्हें बार–बार देखने को सदैव तत्पर रहते हैं।

यह विधा जीवन के विविध अनुभवों, जन जीवन की विक्रतियों, कमजोरियों मन के राग द्वेष, ऊच नीच तृष्णा वितृष्णा भ्रष्टाचार, छुआछूत, शोषण, उत्पीडन आदि भावों को मंच पर उजागर करती है ये अपनी प्रस्तुति के प्रवाह के साथ साथ दर्शकों को हंसाती, रूलाती प्रफुल्लित करती है दर्शक वर्ग का इसके साथ एकात्मक सम्बन्ध हो जाने के कारण अत्यधिक जुड़ाव हो जाता है। इनके कथानक अधिकतर धार्मिक और वीरतापूर्वक होते है जिनके साथ दर्शक वर्ग सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है। प्रस्तुतिकरण की शैली भी सरल सहज एवम सरसता लिए होती है जो आधुनिक नाटकों की तकनीकी क्लिष्टता एवम बंधन से पूर्णतया मुक्त होती है। यहाँ तक कि प्रस्तुतीकरण में लोक कलाकारों को भी अपनी कल्पनानुसार कला प्रदर्शन की भी छूट होती है सहज ग्राह्य गीत संवादों को प्रभावी बनाने हेतु अधिकतर सरल धुनों एवम लोक वाद्यों का ही प्रयोग किया जाता है जिनमे प्रमुख रूप से ढोलक, नगाड़ा, झांझ, मंडल बीन, बांसुरी हारमोनियम आदि वाद्य यन्त्र प्रमुख है अतः

सही मायने में लोक नाट्य लोक के लिए अर्पित, समर्पित और सहज निर्मित लोक रचना है जो संस्कार एवम वातावरण के अनुकूल सहज अभिव्यक्त होती है।

इन लोकनाट्यों में मूलतः हमारे जीवन की नकल होती हैं इसीलिये इन्हें देखने में रस आता है। यह रस, अभिनेता के सजीव अभिनय पर भी निर्भर करता है इसीलिये भावों की अभिव्यक्ति करते समय अभिनेता अपने अंगों और इन्द्रियों के संचालन से, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का प्रयोग करता है साथ ही वाणी, स्वर, मुद्रा एवं अंग–प्रक्षेप द्वारा अर्थ विशेष और भावों को संप्रेषित करने का प्रयत्न करता है।[2]

प्राण तत्व हैं गीत एवं संगीत

लोकनाट्यों की सबसे बड़ी धरोहर उन का गीत एवं संगीत–पक्ष ही है, लोकनाट्य चूंकि लोक जीवन की सरस झांकी प्रस्तुत करते है इसीलिए उल्लास, आनंद और उत्साह के साथ विभिन्न मनोभावों को समेटे इनमे लोकगीत सामाजिक प्रेम सहयोग एवम समन्वय की जीती जागती मिसाल बन जाते है जिनमे किसी भी प्रकार का छल कपट नहीं होता बल्कि समस्त लोक के आत्मिक उदगार होने के कारण ये लोकगीत यथार्थ के भी बहुत समीप होते है साथ ही प्रेम को व्यक्त करते हुए हृदय स्पर्शी हो जाते है इन गीतों के द्वारा ही दर्शको के मन में भावों का आन्दोलन होता है आदिम काल से ही ये लोकगीत लोकानुरंजन के सशक्त माध्यम रहे हैं।

ये गीत ही सही मायने में लोक नृत्यों एवम लोक नाट्यों के प्राण है ये ही हमारे रीति रिवाजों एवम परम्पराओं के भी प्रमुख आधार है जो हमारी संस्कृति की मौलिकता को बचाए रखन में भी महत्वपूर्ण योगदान देते है इतना ही नहीं ये हमारी पुरानी जीवन पद्धति और जीवन आदर्श भी हमें बताते है। पाबू जी राठौड़, गोग चौहान, तेजा जाट आदि वीरों के चरित्र इन्हीं लोक गीतों एवम लोक नृत्यों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढे है इन लोक नाट्यों के गीत ही हमारी संस्कृति के इतिहास की मूल्यवान निधि बन चुके है जिनमें हमें अनेक अलंकरणों का वर्णन सुनाई पड़ता है और इनका गीत संगीत ही संवादों की संचरण शक्ति बढ़ाता है। तथा शब्दों की अभिव्यंजना में चार चांद लगाता है। इसीलिये लोकनाट्यों में भाषा से अधिक महत्व ध्वनि, स्वर एवं ताल की नाटकीय अभिव्यंजनाओं को दिया गया है।

लोकनाट्य में गीत संवादों एवं सहजग्राह्य गेय संवादों की प्रधानता रहती है। साथ ही इन्हें प्रभावी बनाने हेतु अभिनेताओं को भी अपनी–अपनी प्रतिभाओं के प्रयोग की छूट रहती है। प्रचलित धुनों एवं बंदिशों के साथ साथ नई धुने तथा बंदिशें भी रची बसी जाती है। इसी कारण इनमें हास्य विनोद और कटाक्ष की प्रधानता रहती है। परंपरागत रूप से लोकनाट्यों के प्रस्तुतिकरण में छंद विधान, लावनियाँ, रंगते आदि को दोहा, दुबोला, तिबोला, चौबोला, हेला, सोरठा, चौपाई, कड़ी, पत्र, झड, छप्पन, कवित्त, शेर, टेर के रूप में गीत संवादों की भरमार होती है जो कि तालबद्ध होकर नगाड़े एवं डंके की चोट के साथ अपना विशेष प्रभाव पैदा कर दर्शकों के हृदय में रस सिद्धि करते हैं।

लोकनाट्यों में गुंथे गीतों के स्थायी अंतरे बहुधा एक दूसरे में निहित रहते है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इनकी धुनें लय प्रधान होती है गीत का प्रथम चरण पूरा होते ही अभिनेताओं के पांव थिरकने लगते है और वे अपने पदचापों से अनंत वोलों की सृष्टि करने लगते है उस समय भावोद्रक और उत्साह के वातावरण में लय ताल संबंधी अनेक उत्कृष्ट कल्पनाए साकार होती है।

सामाजिक संस्कारों के प्रवर्तक

ये लोकनाट्य प्रचलित जीवन व्यवहार तथा जीवनदर्शन के भी प्रतीक होते है, सामाजिक चिंतन आचार विचार रीतिनीति, निष्ठा तथा पारम्परिक विश्वास लोक नाट्यों में बहुतायत से पाए जाते है तथा जीवन व्यवहार की दृष्टि से बिल्कुल सटीक होते है।

सही मायने में ये लोकनाट्य, लोकसंस्कृति एवं लोक जीवन की चेतना के जीवंत प्रतिबिंब है जिनमें जनसाधारण की अनुभूतियों, आकांक्षाओं एवं प्रवृत्तियों एवं भावनुभूतियों के सजीव चित्रण देखने को मिलता है। ये भाव ही लोक जीवन के मूलमंत्र है, इन्हीं भावों के कारण ही घर, परिवार, समाज व लोकजीवन की नींव स्थिर हैं और यही भाव लोककला एवं संगीत का भी आधार है।

साम्भर लेक में लक्ष्मण परशुराम संवाद का मंचन एवम अपार भीड़ लोक नाट्य रामलीला का आनन्द लेते हुए।

इसीलिए अन्य लोक कलाओं की तरह ही किसी भी लोकनाट्य का कोई विशिष्ट रचयिता नहीं होता वह समस्त समाज की अभिव्यक्ति का प्रतीक एवम प्रतिभाओं के सम्मिलित चमत्कार का एक साकार स्वरूप होता है। उसमे जन जीवन की भावनाओं तथा उपलब्धियों की प्रतिछाया होती है जो सैंकड़ों वर्षो के निरंतर प्रयोग उपयोग से विशेश स्वरूप धारण कर लेते है उनकी शैली गत नीवे गहरी होने लगती है और वे समाज के साथ एक अनुष्ठान की तरह जुड़ जाते हैं उनके कवित्त और गीत रचना भी एक विशिष्ट परंपरा में गुथ जाते है इसीलिए लोक नाट्य की सफलता–असफलता का जिम्मेदार भी समस्त समाज होता है।

यह विद्या जीवन के विविध अनुभवों, जन जीवन की विकृतियों, कमजोरियों, मन के राग, द्वेष, ऊँच, नीच, तृष्णा, वितृष्णा, भ्रष्टाचार, छुआछूत, शोषण, उत्पीड़न आदि भावों को मंच पर उजागर करती है। ये अपनी प्रस्तुति के प्रवाह के साथ साथ दर्शकों को हंसाती, रूलाती, प्रफुल्लित करती है। दर्शक वर्ग का इसके गीत संवादों से प्रभावी एकात्मक सम्बन्ध हो जाने के कारण अत्यधिक जुड़ाव हो जाता है, क्योंकि जो आख्यान प्रस्तुत किये जाते है वह अधिकतर दर्शक वर्ग यानि कि लोकमानस से निकटता से जुड़े पहलुओं, विषयों पर आधारित होते हैं। अथवा धार्मिक या वीरतापूर्ण किस्सों से जुड़े कथानक होते है जिनके साथ दर्शक वर्ग सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

लोक नाट्य रामलीला सांभर लेक में राम केवट संवाद का भाव पूर्ण दृश्य

प्रस्तुतीकरण की शैली भी सरस, सहज एवं सरलता लिये होती है जो आधुनिक नाटकों की तकनीकी विलष्टता एवं बंधन से पूर्णतः मुक्त होती है बल्कि प्रस्तुतिकरण में लोककलाकारों को भी

अपनी कल्पनानुसार कला प्रदर्शन की भी छूट होती है। सहज ग्राह्य गीत संवादों को प्रभावी बनाने हेतु अधिकतर सरल धुनों एवं लोकवाद्यों का ही प्रयोग किया जाता है जिनमें प्रमुख रूप से, ढोलक, नगाड़ा, झाँझ, मांदल, बांसुरी, हारमोनियम आदि वाद्य यंत्र बहुतायत में प्रयुक्त होते हैं।

लालबाबा का अखाड़ा, साम्भर लेक में लोकनाट्य जगदेव कंकाली की जीवन्त प्रस्तुति देते कलाकार

लालबाबा का अखाड़ा, साम्भर लेक में लोकनाट्य हरिशचन्द्र तारामती की जीवन्त प्रस्तुति देते कलाकार

लोकनाट्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व उनका कथोपकथन ही है जो गीत सम्वादों में निबद्ध होता है। पात्र जो कहते है जिन शब्दों में कहते है जिन भाव लहरियों में गाते है व जिन अंग भंगिमाओं तथा नृत्य मुद्राओं में उनकी अभिव्यक्ति करते है दर्शकों के लिए वो ही महत्वपूर्ण है उनकी रूचि केवल पात्र के मधुर कंठ तथा उसके गाये मनोरम गीत संवाद में ही रहती है। अतः लोकनाट्य, लोक के लिये अर्पित, समर्पित और सहज निर्मित लोकरचना है जो संस्कार एवं वातावरण के अनुकूल सहज अभिव्यक्त होती है।

उपसंहार

गीत और संगीत चूंकि आदि मानव की नैसर्गिक अनभूतियों से जुड़े उद्‌गार है इसलिए मानव सभ्यता के साथ–साथ ये भी निरन्तर आगे बढ़े हैं और ये मानवीय अनभूतियाँ एवं भावनाऐं ही गीत एवं संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त होकर लोकनाट्यों में अनुभूतियों का सृजन कर प्रेक्षकों के हृदय में रस सिद्धि करती रही है। चूंकि इन सात्विक भावों का हृदयस्पर्शी संप्रेषण गीत एवं संगीत में अभिव्यक्त होता है। इसीलिये लोकनाट्यों में गीत एवं संगीत अनिवार्य तत्व है जिन्हें हम लोकनाट्यों की आत्मा कह सकते है और इन्हीं के प्रयोग से लोकनाट्य कला प्रभावी होकर दर्शकों के हृदय में आनन्द की अनुभूति कराती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सांसारिक लोक गीतों का शास्त्रीय अध्ययन– लेखिका : डॉ. श्रीमती गीता जोशी, प्रथम संस्करण, 2011 प्रकाशक– आर.डी. पाण्डेय, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाऐं, लेखक : देवीलाल सामर, प्रथम संस्करण 1968, प्रकाशक– भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर।
3. लोक रंग, लेखक– डॉ. महेंद्र भानावत, प्रथम संस्करण जनवरी, 1971 प्रकाशक– भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर।